इकाई 15 गणित विज्ञान

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 वैदिक वाङ्मय में प्राप्त गणितीय साक्ष्य

15.3 वेदांगों में प्राप्त गणितीय परम्परा के साक्ष्य

15.4 आधुनिक गणितीय प्रयोग

15.5 भारतीय गणितीय परम्परा में आचार्यों की भूमिका व उनका कालक्रम

15.6 सारांश

15.7 बोध प्रश्न

15.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.9 उपयोगी पुस्तकें

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- प्रस्तुत पाठ्य—विषय के अध्ययन के पश्चात् आप गणित का परिचय प्राप्त करेंगे तथा वैदिक ग्रंथों में संख्याओं के विविध प्रयोग को समझ पायेंगे।
- वेदों तथा वेदांगों के साथ—साथ प्राचीन से वर्तमान काल तक के गणित परंपरा के निर्वाहक आचार्यों के विषय में तथा उनके द्वारा रचित ग्रन्थों के विषय में जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
- अंकगणित (लीलावती), बीजगणित (बीजगणिततिलक), रेखागणित, खगोलगणित के साथ—साथ सूर्यसिद्धांत आदि बहुत से ग्रन्थों के विषय में जानकारी प्राप्त कर पायेंगे और उनके गूढ़ रहस्यों को भी समझ पायेंगे।

15.1 प्रस्तावना

वैदिक गणित को ही कालक्रमानुसार विविध भागों में विभक्त किया गया है जैसे— अंकगणित, बीजगणित तथा रेखागणित। अंकगणित के अन्तर्गत सामान्य व्यवहार जोड़ने, घटाने, गुणा करने तथा भाग देने जैसी क्रियाओं को सम्मिलित किया गया है। बीजगणित के अन्तर्गत विविध प्रकार के गणनाओं के लिए किसी काल्पनिक (अ, ब, स) आदि मान कर मूल सिद्धांत की अवधारणा तक पहुंचा जाता है।

रेखागणित के अन्तर्गत त्रिभुज, चतुर्भुज, वृत्त आदि में प्रयुक्त कोणों की गणना की जाती है और इसी आधार पर खगोलीय पिण्डों के साथ—साथ विविध प्रकार के खगोलशास्त्रीय अध्ययन करने में भी यह अत्यंत सहायक सिद्ध होता है।

15.2 वैदिक वाड्.मय में प्राप्त गणितीय साक्ष्य

1. ऋग्वेद में प्राप्त गणितीय परम्परा के साक्ष्य

ऋग्वेद को आठ अष्टक और दश मंडलों में विभक्त किया गया है। चारों संहिताओ में सबसे अधिक मंत्र ऋग्वेद में हैं। ऋग्वेद के मंत्रो को ऋचा कहते हैं और इसके ऋत्विक को होता (हौत्र कर्म संपादक) की संज्ञा दी गई है। ऋग्वेद के मंत्रो के मांध्यम से देवताओं का आवाहन किया जाता है जिसमें देवताओं और द्रव्यों के संख्याओं की गणना का उल्लेख व्यापक स्तर पर देखा जा सकता है जिसके विविध उदाहरण इस प्रकार से प्राप्त होते हैं—

ऋग्वेद के प्रथम मंडल के अंतर्गत संख्याओं के लेखन का स्पष्टतया वर्णन प्राप्त होता है जिसके अंतर्गत ऋषि कहते हैं कि जो इंद्र हैं वह एक ही जन समूह पर संपत्तियों पर और पृथ्वी पर रहने वाले पांच प्रकार के प्राणियों पर राज्य करते हैं और उनका सभी प्रकार से संरक्षण करते हैं।

> य एकश्चर्षणीनां वसूनाभिरज्यति।
> इन्द्रः पञ्चक्षितीनाम्।। (ऋ० 1.7.9)

ऋग्वेद के प्रथम मंडल के अंतर्गत संख्याओं के बारे में वर्णन प्राप्त होता है वह संख्या तीन (3) और सात है जिसमें कहा गया है कि जो मनुष्य इन देवताओं को प्रतिदिन तीनबार (3) सात (7) आहुतियां प्रदान करता है और उनकी स्तुति करता है वे देवता उसके स्तुति से प्रसन्न होकर उसे रत्न प्रदान करते हैं।

> ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरा सप्तानि सुन्वते।
> एकमेकं सुशस्तिभिः ।। (ऋ० 1.20.7)

ऋग्वेद के प्रथम मंडल के 164 वें सूक्त के 48वें के मंत्र में ज्योतिष—गणित सम्बन्धित तिथियों की गणनाओं का उल्लेख प्राप्त होता है।

> द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानिक उ तच्चिकेत।
> तस्मिन् साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः।। (ऋ० 1.164. 48)

अंकों के अंकन की पद्धति उच्चारण के शब्दांक और संख्यांक दोनों एक दूसरे के विपरीत होते हैं। जैसे पंचदश=15, एकादश=11, द्वादश=12, त्रिंशत्=30

अंकानां वामतो गति।

ऋग्वेद के अन्तर्गत संख्याओं के लिखने की विधि का वर्णन प्राप्त होता है जो अत्यंत सरल है।

त्रीणि शतानि त्रिसहस्राणि त्रिंशत् च नव च। (ऋ० 3.9.9)

इस मंत्र के अंतर्गत सर्वप्रथम इकाई से आरंभ कर इकाई (9), दहाई (30), सैकड़ा(100), हजार (1000) तक संख्याओं के वृद्धिक्रम को लिखने की विधि का उल्लेख मिलता है जो इस प्रकार से है—

नव(9) तीस (30) तीन सौ (300) तीन हजार (3000)।

वैदिक काल में गणितीय गणना का श्रेष्ठ स्थान रहा है इसकी पुष्टि ऋग्वेद के इस मंत्र से होती है जिसमें कहा गया है कि जो मनुष्य ग्रहण–गणना (ग्रहण काल का निर्धारण) करने में असमर्थ होता था मूर्ख माना जाता था।

अक्षेत्रविद्यथा मुग्धो। (ऋ० 5.40.5)

ऋग्वेद के सातवें मंडल में संख्या लेखन के अंतर्गत एक और बीस (1 और 20) का स्पष्ट वर्णन देखा जा सकता है–

> **एकं च यो विंशतिं च श्रवस्या वैकर्णयोर्जनान्राजा न्यस्तः।**
> **दस्मो न सद्मन्नि शिशाति बर्हिः शूरः सर्गमकृणोदिन्द्र एषाम् ।। ऋ० (7.18. 11)**

इन्द्र ने सुदास (उत्तमजन) की सहायता करने के लिए मरुत को उत्पन्न किया जो मरुत गण संग्राम में शत्रुओं को उसी प्रकार से काटते हैं, जिस प्रकार से एक युवक दर्भो को क्षणभर में काट देता है। इंद्रदेव ने सुदास (उत्तमजनों)की रक्षा करने के लिए इक्कीस (21) वैकर्णों का वध किया।

ऋग्वेद के दसवें मंडल के अक्षसूक्त (34वें सूक्त) के अन्तर्गत पठित दूसरे मंत्र में द्यूत–विद्या में अक्षों के ऊपर 1,2,3,4.... प्रकार के चिह्नों के अंकन की विधि का उल्लेख प्राप्त होता है। इस सूक्त के आठवें मंत्र में दहाई वाले संख्या का उल्लेख मिलता है जो इस प्रकार से है–

> **त्रिपञ्चाशः क्रीकति व्रात एषां देवइव सविता सत्यधर्मा।**
> **उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते राजा चिदेभ्यो नम इत्कृणोति।। (ऋ०10.34.08)**

जिस प्रकार से भगवान सूर्य की किरणें एक स्थान से दूसरे स्थान पर क्रीड़ा करती हुईं विचरण करती हैं उसी प्रकार से द्यूत–विद्या में प्रयुक्त तिरपन (53) पाँसो का समूह भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरण करता रहता है। द्यूत–विद्या के पाँसो की तुलना उग्रस्वभाव वाले मनुष्यों से की गई है जो ना ही बड़ो के सम्मान में झुकते है ना ही छोटे के स्नेह से उनके वस में ही आते हैं। इस द्यूत–विद्या को राजा (श्रेष्ठजन) दूर से ही प्रणाम करते हैं।

> **इन्द्रेण युजा निः सृजन्त वाघतो व्रजं गोमन्तमश्विनम्।**
> **सहस्रं मे ददतो अष्टकर्ण्यः श्रवो देवेष्वक्रतः।। (ऋ०10.62.7)**

अंको की लेखन पद्धति का वर्णन ऋग्वेद के दसवें मंडल में प्राप्त होता है जिसके अन्तर्गत ऋषि कहते हैं कि वह एक स्थान पर हजारों (1000) के समूह में गायों को देखे जिनके कान पर आठ (8) अंक का अंकन किया हुआ था।

ऋग्वेद के दशवें मंडल के अंतर्गत संख्याओं के विषय में विशद वर्णन प्राप्त होता है जिसके अंतर्गत प्रजापति से उत्पन्न होने वाले सप्त ऋषि, अष्ट वसु, भृगु तथा दसों दिशाओं की उत्पत्ति का वर्णन प्राप्त होता है–

> **सप्त वीरासो अधरादुदायन्नष्टोत्तरात्तात्समजग्मिरनन्ते।**
> **नव पश्चातातिस्थविमन्त आयदन्दश प्राक्सानु विरन्त्यश्नः।। (ऋ० 10.27.15)**

प्रस्तुत मंत्र में ऋषि कहते हैं की प्रजापति के नाभि–प्रदेश से सातवीर अर्थात् सप्तऋषि (सप्त धातु), उत्तर भाग से अष्टवसु बाल्याखिल्यादि प्रकट होकर एक साथ एकत्रित

होते हैं। पृष्ठदेश से नव अर्थात भृगु आदि उत्पन्न हुए। पूर्व की ओर से दसों दिशाओं अर्थात् अंगिराओं की उत्पत्ति हुई। प्रजापति से उत्पन्न समस्त ऋषि ,वसु ,भृगु, तथा अंगिरा आदि भोजन करते हुए धरती तथा आकाश दोनों लोक से उत्पन्न क्षेत्रों का विकास करने में अपना योगदान करने लगे।

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्व स्परि।
देवाँ उप प्रैत्सप्तभिः परा मार्ताण्डमास्यत्।।(ऋ०10.72.08)

प्रस्तुत मन्त्र में संख्याओं को जोड़ने–घटाने की प्रवृत्ति का उल्लेख प्राप्त होता है जिसके अन्तर्गत अदिति के आठ पुत्र हैं जो उसके शरीर से उत्पन्न हुए। वह दोनों से मिलने सात के साथ जाती है। मार्तण्ड को उसके ऊपर छोड़ दिया जो आठवाँ था।

2. यजुर्वेद में प्राप्त गणितीय परम्परा के साक्ष्य

यजुर्वेद 40 अध्यायों में विभक्त है जिसके अंतर्गत विविध प्रकार के यज्ञों तथा कर्मकांडों को संपादित करने की विधि का उल्लेख प्राप्त होता है। इस वेद के वैदिक मंत्रों का प्रयोग करने वाले को अध्वर्यु नामक ऋत्विक् (पुरोहित) की संज्ञा दी गई है जो यज्ञ के संपादन में विशेष भूमिका निभाता है।

यजुर्वेद संहिता के अतंर्गत संख्याओं के विविध प्रकार को देखा जा सकता है जैसे – युग्म–अयुग्म (सम – विषम) व एक से परार्द्ध (1 से 1000000000000) तक का उल्लेख प्राप्त होता है जो गणित के उत्कर्ष का सूचक है।

निम्नलिखित सारणी के माध्यम से यजुर्वैदिककालीन संख्या के लेखन की अत्यन्त समृद्ध परम्परा का दर्शन प्राप्त होता है जो इस प्रकार से है –

एक = 1 (10^0)

दश = 10 (10^1)

शत = 100 (10^2)

सहस्र = 1000 (10^3)

अयुत = 10000 (10^4)

नियुत = 100000 (10^5)

प्रयुत = 1000000 (10^6)

अर्बुद = 10000000 (10^7)

न्यर्बुद = 100000000 (10^8)

समुद्र = 1000000000 (10^9)

मध्य = 10000000000 (10^{10})

अन्त = 100000000000 (10^{11})

परार्द्ध = 1000000000000 (10^{12})

इमा मे अग्न इष्टका धेनवःसन्त्वेकाचदशचदशच शतं चशतं चसहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं चन्यर्बुदं च समुद्रश्चमध्यंचान्तश्च परार्धश्चैता अग्नइष्टका धेनवःसन्त्वमुत्रामुष्मिल्लोके ॥यजुर्वेद (17.2)॥

यजुर्वेद के अट्ठारहवें अध्याय के 24वें तथा 25वें मंत्र के अंतर्गत समसंख्या (Even Number) तथा विषमसंख्या (Odd Number) इन दोनों को वैदिक भाषा में अयुग्म (साम) तथा युग्म (स्तोम) संख्याओं का व्यापक वर्णन मिलता है।

एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च मे एकादश च मे एकादश च मे त्रयोदश च में त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश मे नवदश च मे एकविंशतिश्च मे एकविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च त्रयोविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे एकत्रिंशश्च मे एकत्रिंषष्च मे त्रयस्त्रिंशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।। (यजु० 18.24)

यजुर्वेद के इन मंत्रो का लौकिक प्रयोग रुद्रपाठ के अंतर्गत आने वाले चमक अध्याय से लिया गया है जिसके अन्तर्गत विषम संख्याओं को क्रम से व्यवस्थित किया गया है जो इस प्रकार से है–

एक, तीन, पाँच, सात, नव, ग्यारह, तेरह, पन्द्रह, सतरह, उन्नीस, इक्कीस, तेईस, पच्चीस, सत्ताईस, उन्तीस, इकत्तीस, तथा तैंतीस अयुग्म साम मुझे यज्ञ से सिद्ध होवें।

इन संख्याओं को इस रूप में भी लिखा जा सकता है–

(1,3,5,7,9,11,13,15,17,19,21,23,25,27,29,31,33) इन संख्याओं को विषम संख्या अर्थात् अयुग्म (Odd Number) कहते हैं।

सम संख्याओं का उल्लेख यजुर्वेद के 18वें अध्याय के 25वें मंत्र में उल्लेख मिलता है।

चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विंशतिष्च मे विंशतिष्च मे चतुर्विंषतिष्च मे चतुर्विंषतिष्च मेऽष्टाविंशतिश्च मेऽष्टाविंशतिश्च मे द्वात्रिंशच्च मे द्वात्रिंशच्च मे षट्त्रिंशच्च में षट्त्रिंशच्च में चत्वारिंशच्च मे चत्वारिंशच्च मे चतुश्चत्वारिंशच्च मे चतुष्चत्वारिंशच्च मेऽष्टाचत्वारिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्। (यजु० 18.25)

चार, आठ, बारह, सोलह, बीस, चौबीस, अठ्ठाईस, बत्तीस, छत्तीस, चालीस, चवालिस, और अड़तालीस स्वर्ग को प्रदान करने वाले युग्म स्तोम यज्ञ के द्वारा सिद्ध होवें।

इन संख्याओं को इस रूप में भी लिख सकते हैं – (4,8,12,16,20,24,28,32,36,40,44,48) इन संख्याओं को सम संख्या (Even numbers) कहते हैं। इस प्रकार इस मंत्र में 4 का टेबल (पहाड़ा) भी है। यजुर्वेद के उपर्युक्त मन्त्र में समान्तर श्रेढ़ी (Arithmetic Progression) प्राप्त होती है।

यजुर्वेद के चौदहवें अध्याय के 23वें मंत्र में जोड़ने, घटाने, गुणा करने जैसी गणितीय क्रियाओं का उल्लेख मिलता है–

आशुस्त्रिवृद्भान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशो धरुण एकविंशः प्रतूर्तिरष्टादशस्तपो नवदशोभीवर्तः सविंशो वर्चो द्वाविंशः सम्भरणस्त्रयोविंशो योनिश्चतुर्विंशो गर्भाः पञ्चविंशऽओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिंशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिँशो ब्रध्नस्य

विष्टपञ्चचतुस्त्रिंशोनाकः षट्त्रिंशोविवर्तोऽष्टाचत्वारिंशो धर्त्रं चतुष्टोमः।। (यजु० 14.23)

उपरोक्त मंत्र में ईंट को संबोधित करते हुए कहते हैं कि हे ईंट! तुम तीन (3) बार स्तुति करने के योग्य हो। चंद्रमा की पंद्रह (15) किरणें तुम ही हो। सत्तरह (17) व्योम तुम ही हो। इक्कीस (21) सूर्य तुम ही हो, अट्ठारह (18) प्रतूर्ति तुम ही हो। उन्नीस (19) तप तुम ही हो। उन्नीस (19) अभिवर्त तुम ही हो। बाइस (22) वर्च्च तुम ही हो। तेईस (23) सम्भरण भी तुम ही हो, चौबीस (24) योनि तुम ही हो। पच्चीस (25) गर्भ तुम ही हो, सताईस (3×9=27) ओज तुम ही हो, इकतीस (31) क्रतु तुम ही हो, तैंतीस (33) प्रतिष्ठा, चौंतीस (34) ब्रह्म के विष्ट तुम ही हो, छत्तीस (36) नाक, अड़तालिस (48) विवर्त तथा चार (4) स्तोम तुम ही हो।

3. सामवेद में प्राप्त गणितीय परम्परा के साक्ष्य

सामवेद का दो रूप प्राप्त होता है– ऋक् तथा साम। ऋक् के अतंर्गत पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक आते हैं तथा साम के अंतर्गत ग्रामगान, अरण्यगान तथा रहस्यगान (विकृतिगान) आते हैं। इसमें कुल ऋको (मंत्रो) की संख्या 1875 है।

सामवेद के साम मंत्रो के ऊपर 1,2,3,4,5..... प्रकार की संख्या का अंकन (संख्यांक और संख्याएं) किया गया है जिसके आधार पर सामवेद में स्वरों का संचालन किया जाता है। इस वेद के मंत्रों (साम) का यज्ञ में गान करने वाला ऋत्विक् **उद्‌गाता** कहलाता है।

सामवेद के पवमान पर्व के अंतर्गत पांचवे अध्याय के छठे प्रपाठक के तीसरे मंत्र में ऋषि पराशर स्तुति करते हुए ऋक्, यजु, साम, को तीन से संबोधित करते हैं जो संख्याओं का बोधक है।

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः।। (साम० पवमानपर्व, 5.6.3)

प्रत्येक बृहद् यज्ञों जैसे– सोमयज्ञ, वाजपेययज्ञ, चयन आदि में हवि पहुँचाने वाले पुरोहितों जैसे– होता, अध्वर्यु, तथा उद्‌गाता को क्रमशः ,ऋक्, यजु, साम के वैदिक प्रोक्ताओं के रूप में तिस्रः वाचः की संज्ञा से संबोधित किया है जो तीन स्तुतियों (ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद) का उच्चारण करता है। यज्ञ को धारण करने वाली सोम (यज्ञ द्रव्य विशेष) की कल्याणरूपी वाणी का उच्चारण करता है। वृषभ के समीप जिस प्रकार साधारणतया गायें जाती हैं, उसी प्रकार पूछते हुए कामना रखने वाले स्तोता(स्तुति करने वाले ऋत्विक्) सोम के समीप स्तुति करने के लिये जाते हैं।

इसी प्रकार सामवेद के आरण्यक पर्व में भी ऋषि वामदेव अग्नि नारायण की स्तुति करते हुए विराट्पुरूष के विश्वव्यापक स्वरूप का वर्णन संख्याओं को आश्रय मान कर करते हैं। यह मंत्र ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद आदि संहिताओं में भी प्राप्त होता है जिसे पुरुषसूक्त के नाम से जाना जाता है–

सहस्रशीर्षाः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं सर्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशांगुलम्॥(साम० आरण्यक पर्व, 6.4.3.)

अर्थात् विराट पुरुष हजार (1000) सिर वाला, हजार (1000) नेत्रों वाला, हजार

(1000) पैरों वाला तथा ब्रह्मांड गोलकरूप भूमि को सब ओर से घेरकर 10 अंगुली के क्षेत्र विशेष अंतःदेश हृदय को व्याप्त करके स्थित है।

> त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे।
> आ पुरन्दरं चकृम निप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे।। (साम० उत्तरार्चिक 16.1.2)

इसी प्रकार से सामवेद संहिता के अन्तर्गत उत्तरार्चिक भाग में भी ऋषिगण इंद्र की दानशीलता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हे इंद्र! तुम यज्ञ में आहुति प्रदान करने वाले स्वयं में निष्ठा रखने वाले यजमानों को सैकड़ो(100) और हजारों(1000) गायों के समूह को देते हो। शत्रु के नगर को तुम नष्ट करने वाले स्वजन की सर्व प्रकार से रक्षा करने में समर्थशील इंद्र हम तुम्हारी स्तुति करते हैं।

4. अथर्ववेद में प्राप्त गणितीय परंपरा के साक्ष्य

अथर्ववेद का उपनाम अंगिरस वेद है। यह 20 कांडो में विभक्त है। जिसके अंतर्गत 731 सूक्तों में 5987 मंत्र है। अथर्ववेद मुख्य रूप से यज्ञ विधि के प्रायश्चित् प्रकरण का निरूपण करता है। ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के साथ–साथ अथर्ववेद का विधिवत ज्ञाता ऋत्विक् ब्रह्मा कहलाता है। यह संपूर्ण यज्ञ का द्रष्टा होता है जिसके आज्ञा के अनुसार ही यज्ञ सम्पादित होता है।अथर्ववेद में भी हमें विविध स्थानों पर गणित का व्यापक उल्लेख प्राप्त होता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में व्यावहारिक विज्ञान के साथ–साथ विविध प्रकार के सामाजिक (Social Science), गणितीय सिद्धांतो (Mathematical theories) की उपयोगिता के कारण अथर्ववेद की प्रासंगिकता बढ़ी है।

> एकया च दशभिश्चा सुहुते द्वाभ्यामिष्टये विंशत्या च।
> तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता च वियुग्भिर्वाय इह ता वि मुञ्च ।। (अथर्व० 7.4.1)

जैसे अथर्ववेद के सातवें कांड के चतुर्थ सूक्त के पहले मंत्र में प्रजापति तथा वायुदेव एक (1) और दश (10) से दो (2) और बीस 20, तीन और तीस 30 शक्तियों से युक्त होकर के यज्ञ में पधारें तथा सब प्रकार से हमारी मनोकामनाओं को पूर्ण करें और दैवी शक्तियों से हमें पूर्ण करें।

> ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव।
> अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः।।
> षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत् पञ्च सम्नयि।
> चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि।।
> द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः।
> तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः।। (अथर्व० 19.47.3–5)

इसी प्रकार से अथर्ववेद के रात्रिसूक्त के अंतर्गत संख्याओं का बृहद् उल्लेख प्राप्त होता है। ऋषि रात्रिसूक्त के अतंर्गत रात्रि को संबोधित करते हुए कहते हैं कि हे रात्रि देवि! जो तुमको जानने वाले हैं, ऐसे 99, 88, तथा 77 हैं। हे रेवति! (रात्रि) वें 66 हैं। हे सुम्नयि! वे 55 हैं। हे वाजिनि! वे 44 हैं, 33 हैं। हे रात्रि देवि! वे 22 हैं, वे 11 हैं। ऋषि कहते हैं कि हे रात्रि! आप दिव्यलोक की कन्या हैं। आप उन राक्षसों द्वारा हमारा सर्वप्रकार से समरक्षण करें और हम पर अपनी कृपादृष्टि बनाए रखें।

अथर्ववेद के अंतर्गत रोगों के उपचारार्थ मन्याविनाशन सूक्त के अंतर्गत ऋषि शुनःशेप के कण्ठ के रोग के निदान के विषय में गणितीय उल्लेख मिलते हैं तथा इसी सूक्त में शरीर विषयक गूढ़ विज्ञान के दर्शन के साथ सामाजिक मूल्य को भी देखा जा सकता है–

पञ्च च याः पञ्चाशच्च संयन्ति मन्या अभि।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव।।
सप्त च या सप्ततिश्च संयन्ति ग्रैव्या अभि।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव।।
नव च या नवतिश्च संयन्ति स्कन्ध्या अभि।
इतस्ताः सर्वा नश्यन्तु वाका अपचितामिव।। (अथर्व० 6.25.1–3)

ऋषि कहते हैं कि जो मनुष्य गण्डमाल रोग से पीड़ित है उसके गर्दन में पचपन (55), ग्रीवा मे सतहत्तर (77), और कन्धे में निन्यान्नबे (99) धमनियां उसी प्रकार से नष्ट हो जाती है जैसे किसी पतिव्रता के सम्मुख अपशब्द नष्ट हो जाते है।

इसी प्रकार से अथर्ववेद में शत्रु पराजय नामक सूक्त के अंतर्गत भृगु तथा अंगिरा ने इंद्रदेव की स्तुति की है–

बृहत् ते जालं बृहत् इन्द्र शूर सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य ।
तेन शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदं जघान शक्रो दस्यूनाभिधाय सेनया ।। (अथर्व० 8.8.7)

जिसके अंतर्गत वे कहते हैं कि हे शूर! आप यज्ञ में हजारों (1000) अर्घ्य से पूज्य सैकड़ों (100) जाल वाले बल से आप की परिधि अत्यंत विशाल है। इसी विशाल जाल से आप ने सैकड़ों (100), हजारों (1000), लाखों (100000) तथा करोड़ों (10000000) दस्युओं का संहार किया था।

15.3 वेदांगों में प्राप्त गणितीय परंपरा के साक्ष्य

वेदांग के अंतर्गत शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छंद, व्याकरण तथा ज्योतिष का समावेश होता है। वैदिक साहित्य के विकास के क्रम में वेदांग का विशेष योगदान है। इसके माध्यम से ही वेदों के गूढ़ तत्त्वो के विषय में सारगर्भित जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

1. शिक्षा को वेदपुरुष की नासिका कहा गया है जिसके अतंर्गत वेदों के उच्चारण की प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है।

2. कल्प को वेदपुरुष का हस्त कहा गया है जिसके अन्तर्गत यज्ञविधि व यज्ञवेदी निर्माण की प्रक्रियाओं का उल्लेख किया गया है।

3. व्याकरण को वेदपुरुष का मुख कहा गया है जिसके अन्तर्गत वैदिक मन्त्रों के अर्थ को समझा जा सकता है।

4. निरूक्त को वेदपुरुष का कर्ण कहा गया है जिसके अन्तर्गत वैदिक मन्त्रों में प्रयुक्त विशेष शब्दों का निर्वचन किया गया है जो अत्यंत वैज्ञानिक हैं।

5. छंद को वेदपुरूष के पाद की संज्ञा दी गई है जिसके माध्यम से वेदों में पठित

मन्त्रों के छन्दों का निर्धारण किया जाता है।

6. ज्योतिष वेदपुरुष का नेत्र है जिसके अन्तर्गत यज्ञ संपादन के लिए उपर्युक्त काल का निर्धारण किया जाता है।

कल्प वेदांग में प्राप्त गणित

मुख्य रूप से कल्प वेदांग के अन्तर्गत गणितीय तथ्यों का विशेष रूप से प्रयोग देखा जा सकता है चाहे वह वेदीनिर्माण हो अथवा यज्ञ पात्र के निर्माण में प्रयुक्त माप की विधि। गणित के विविध आयाम यथा– रेखागणित, बीजगणित तथा अंकगणित को एक स्थान पर रूप से देखा जा सकता है।

कल्प वेदांग के मुख्यरूप से चार भाग जैसे–ं श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र तथा शुल्बसूत्र में विभक्त किया गया है, जिसके विषय क्रमशः यज्ञविधि प्रयोग, गृहकर्म प्रयोग, धर्मशास्त्रविषयक निर्णय, यज्ञवेदी व पात्र निर्माण प्रक्रिया का उल्लेख प्राप्त होता है।

1. श्रौतसूत्र – इसके अन्तर्गत श्रुति में प्रतिपादित वैदिक मन्त्रों का प्रयोग जैसे अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास, चातुर्मास, सोमयाग, राजसूय, अश्वमेध आदि श्रौतयज्ञों के विधि का क्रमबद्ध वर्णन प्राप्त होता है।

2. गृह्यसूत्र– इसके अन्तर्गत गृहकार्य में गृहस्थ जीवन संबंधी संस्कारों और गृहाग्नि में सम्पन्न होने वाले बलिवैश्वदेव आदि यज्ञों तथा गर्भाधान से आरम्भ होकर अंत्येष्टि पर्यंत संस्कारों का विधिवत उल्लेख प्राप्त होता है।

3. धर्मसूत्र – इसके अन्तर्गत सामाजिक आचार–विचार तथा वर्णों एवं आश्रमों से सम्बद्ध धर्मकर्म के विषय में विधि, निषेधों तथा कर्त्तव्यों का वैदिककालीन स्वरूप वर्णित है। मानव धर्म, समाज व्यवस्था, राजधर्म इत्यादि, छः धर्मसूत्रों जैसे– गौतम, आपस्तम्ब, वसिष्ठ, बौधायन, हिरण्यकेशी और विष्णुधर्मसूत्र आदि में पुरुषार्थों का वर्णन है।

4. शुल्बसूत्र– शुल्बसूत्रों में यज्ञ–निमित्तक वेदी के निर्माण का विवरण है। इनका काल 800–400 ई०पू० के मध्य माना जाता है। शुल्ब का अर्थ है मापने का धागा (सूत)।

भारतीय ज्यामिति की शुरुआत इन्हीं से होती है। वर्तमान समय में शुक्लयजुर्वेद से सम्बद्ध कात्यायनशुल्बसूत्र तथा कृष्णयजुर्वेद के छः शुल्बसूत्र प्रप्त होते हैं – आपस्तम्ब, मानव, मैत्रायणीय, वराह, सत्याषाढ़ तथा वाधूल साक्षात् सम्बन्ध है।

बौधायन शुल्बसूत्र सबसे प्राचीन और सबसे विस्तृत है। इसमें कुल 10 अध्याय हैं। इसमें लम्बाई के विभिन्न परिमाणों की सारणी, नित्याग्नियों बृहद् वेदी निमार्ण के माप अग्निचिति के क्षेत्रफल के यज्ञों के लिए वेदियों तथा मण्डपों के माप, अग्निमिति के श्येनचिति के माप, श्येन (बाज) पक्षी के शरीर, सिर, पंख और पूँछ के अनुसार बनायी जाने वाली अग्निचिति की रचना का वर्णन, त्रिकोणाकृति द्रोणचितियों, श्मशानचिति, कूर्मचिति इत्यादि का वर्णन प्राप्त होता है।

कात्यायन शुल्बसूत्र में क्षेत्रफल जानने की एक से अधिक रीतियाँ दी गईं है। इसमें वर्ग, आयत, त्रिभुज आदि भौमितिक आकृतियों का विन्यास करने की प्रक्रिया वर्णित है। कात्यायन शुल्बसूत्र सबसे छोटा एवं अर्वाचीन है।

मानव शुल्बसूत्र – तीन भागों में विभाजित किया गया है– (1) शुल्ब (2) उत्तरेष्ठक

और (3) वैष्णव ।

इसमें भूमिति की जानकारी, अग्निचिति, मण्डप, वेदि आदि का विन्यास, मण्डपों का नाप, आकार, वर्गाकृति, श्येनचिति का विन्यास, ईंटों का नाप और रचना दी है।

आपस्तम्ब शुल्बसूत्र– यह शुल्बसूत्र पटल, खण्ड और सूत्रों में विभाजित किया गया है। इसमें 5 पटल और 21 खण्ड हैं। इसमें भूमिति, गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि और उत्कर का नाप, श्येनचिति का आकार, नाप, अग्निचिति के क्षेत्रफल की जानकारी तथा अन्तिम खण्ड में अश्वमेघीय अग्निचिति के विषय में बताया गया है।

वेदाङ्ग के शुल्बसूत्रों के द्वारा हमें त्रिभुज, चतुर्भुज, वर्ग, आयत, समानान्तर चतुर्भुज, वृत्त आदि की संरचना के बारे में नियमों की जानकारी प्राप्त होती है। कात्यायन शुल्बसूत्र का प्रारम्भ इस कथन से होता है–

रज्जु समासं व्याख्यामः।
पाईथागोरस प्रमेय (च्लजींहवतें जीमवतमउ)

पाईथागोरस प्रमेयजो समीकरण $C^2=B^2+A^2$ के द्वारा जाना जाता है। यह प्रमेय पाईथागोरस (580–500ई० पू०) से पूर्व बौधायन (800 ई० पू०) के द्वारा निर्मित है।

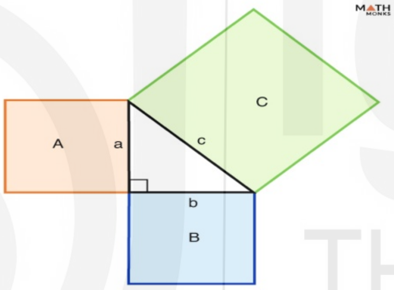

इस प्रमेय का मूल तैत्तिरीय संहिता और शतपथ ब्राह्मण में भी प्राप्त होता है। यथा–

$3^2+4^2=5^2$, $12^2+5^2=13^2$,

$15^2+8^2=17^2$, $2^2+24^2=25^2$

$12^2+35^2=37^2$, $15^2+36^2=39^2$

यह बौधायन शुल्बसूत्र में निम्नलिखित प्रकार से प्राप्त होता है–

दीर्घचतुस्रस्याक्ष्णया रज्जुः पार्श्वमानी तिर्यङ्कमानी च यत्पृथग्भूते कुरूतस्तत्दुभयं करोति।
बौधायनशुल्बसूत्र (1.48)

आयत के अक्ष्णयारज्जु के वर्ग का क्षेत्रफल पार्श्वमानी और तिर्यङ्मानियों के अलग–अलग वर्गों के क्षेत्रफलों के योग के समान होता है। जिसको समकोण त्रिभुज में उपर्युक्त चित्र के द्वारा समीकरण $C^2 = B^2 + A^2$ के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।

कात्यायन शुल्बसूत्र में भी इसी प्रकार कहा गया है–

दीर्घचतुस्रस्याक्ष्णया रज्जुः तिर्यङ्मानी पार्श्वमानी च यत् पृथग्भूते

कुरुतस्तदुभयं करोतीति क्षेत्रज्ञानम्। (कात्या० शुल्ब.–2.11)

अर्थात् आयत का कर्ण दोनों क्षेत्रफलों को उत्पन्न करता है जिसे उसकी लम्बाई तथा चौड़ाई अलग–अलग उत्पन्न करती हैं।

निम्नलिखित सूत्र में बौधायन और आपस्तम्ब दोनों $\sqrt{2}$ की व्याख्या करते हैं–

समस्य द्विकरणी। प्रमाणं तृतीयेन वर्धयेत्तच्च चतुर्थेनात्मचतुस्त्रिंशोनेन सविशेषः।(बौधायन शु० I.61–62, आपस्तम्ब शु० I.11–12)

अर्थात् प्रमाण (वर्ग) भुजा की लम्बाई की इसके एक तिहाई से वृद्धि करने पर और इसमें इसके एक तिहाई भाग का चौथाई भाग मिलाने पर और दूसरा 1/34 भाग व्यवकलित करने पर $\sqrt{2}$ का मान प्राप्त होता है–

अर्थात्

$\sqrt{2} = 1 + 1/3+1/3\times4 - 1/3\times4\times34$

$= 577/408 = 1.41421568627451 = 1070$

15.4 आधुनिक गणितीय प्रयोग

बीजगणित (**Algebra**)

बीजगणित को अमूर्त के नाम से भी जाना जाता हैं। जब हम इसके गणित की बात करते हैं तो हम यह देखते हैं कि यह अक्षरों पर आधारित है। अक्षरों को बीज के नाम से भी जाना जाता है। बीजगणित यह नाम से ही पता चलता है कि इसमें अक्षरों यानी बीज की गणना होती है, अतः इसे बीजगणित कहा जाता है।

बीजगणित में संख्याओं के भेद अक्षरों में भी आते हैं तथा अक्षरों को मुख्य विषय मानकर ही गणना की जाती है। जैसे पाटीगणित (अंकगणित) में संख्याओं 1,2,3,4,5 अंको में प्रकट की जाती है एवं बीजगणित में संख्याएं अ, ब, क अथवा या, वा, नी, पी इत्यादि।

कलन (**Calculus**)

कलन अत्यल्प राशियों (Infinitesimal Quantities) पर आधारित होती है। कलन दो प्रकार का होता है। 1. चलन–कलन (Differential Calculus) और 2. इंटीग्रल कलन (Integral Calculus)। चलन–कलन का अर्थ ''चाल'' या ''गति'' का हिसाब होता है। हम यदि उदाहरण के तौर पर देखें तो दों राशियां **य** और **र** में यह संबंध है–

र= 2 य^2+1 .... (1) समीकरण

मान लीजिए इस समीकरण में हम यदि य = 2 रखते हैं तो र = 9 होता है। यदि य = 2×1/2 हो तो र = 13×1/2 और य= 3 हो तो र=19 होगा। हमें यहां यह देखने को मिलता है कि हम जैसे य के मान को बदलते हैं ठीक उसी प्रकार र का मान बदलता जाता है। जिस चिह्न का मान बदलता रहता है वह चर (variable) कहलाता है तथा जिस चिन्ह का मान नहीं बदलता वह अचर (Constant) कहलाता

है। यदि हम समीकरण (1) की बात करें तो य एक चर (variable) है , 2 और 1 अचर (Constant) हैं। समीकरण 1 में य को हम कोई भी मान दे सकते हैं इसलिए यह स्वतंत्र चर (Independent Variable) कहा जाता है। र का मान य के मान पर आश्रित है, इसलिए र को परतंत्र चर (Dependent Variable) कहा जाता है। इस प्रकार य का फलन (Function) वह होता है जो य के प्रत्येक मान के लिए निश्चित होता है। हमलोग यहां देखते हैं कि समीकरण 1 में र, य का फलन (Function) है। इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी फलनीय संबंध में एक राशि की परिवर्तन दर (Rate of change) दूसरी राशि की परिवर्तन दर पर निर्भर होती है। चलन–कलन का उद्देश्य इसी परिवर्तन दर (Rate of change) का अध्ययन है। चलन–कलन के लिए सूत्र का आविष्कार मुंजाल ने 910 ई0 में किया। भारतीय गणितज्ञों जैसे भास्कराचार्य 1114 ई०, माधव 1340ई०, नीलकंठ 1444 ई० और ज्येष्ठदेव 1475 ई० ने इंटीग्रल कलन (Integral Calculus) पर कार्य किया है। इन्होंने माइकल रौल 1691ई० और जॉन वालिस 1616–1703 ई० के प्रमेयों से पूर्व ही सूत्रों का आविष्कार किया था।

संख्या (Numbers)

हम लोग यह जानते हैं कि अंक की सहायता से संख्या प्रकट होती है। अर्थात अंक शब्द का अर्थ "संख्या" शब्द में रूढ़ हो गया परंतु दोनों में अंतर है जैसे 21 संख्या है जो 2 और 1 अंक के मेल से बनी है।

अंक (Digit)

अंक का अर्थ संख्या (Number) के रूप में लिया जाता हैं। जैसे अंकगणित अर्थात् संख्या संबंधी गणित परंतु दोनों में अंतर है। जैसे 0 से 9 तक अंक (Digit) कहलाते हैं। इन्हीं के मेल से संख्या जैसे 31 बनती है। इसमें 3 और 1 अंक हैं।

शून्य (Zero)

हम सभी को पता है कि यदि दो सामान किंतु विपरीत चिह्न वाली राशियों को जोड़ेंगे तो उनका योग शून्य होता है। अर्थात् क–क = 0। संस्कृत में तच्छेद इसका पर्याय है। शून्य को हम यदि किसी राशि में जोड़ेंगे या घटायेंगे तो उससे राशि के चिह्न में कोई अंतर नहीं होगा। आधुनिक संकेत लिपि में–

(0+अ=अ, अ+0=अ, अ–0=अ, 0÷अ=0, अ÷0=खहर, 0×अ=0)

अनन्त(Infinity)

अनन्त (Infinity) के ऊपर गणित के क्षेत्र में सर्वप्रथम कार्य ब्रह्मगुप्त ने 'ब्राह्मस्फुटसिद्धांत' में स्पष्ट किया है। शून्य के साथ इसे जोड़कर ही गणना की जाती है।

शून्ययोः खडनयो खशून्य खशून्ययोर्वा बद्धः शून्यम्।

अर्थात् गणित की भाषा में "$a \times 0 = 0$, $0 \times 0 = 0$ तथा $-a \times 0 = 0$"

'खयोगे वियोगे धनर्णं तथैव च्युतं शून्यतस्तद्विपर्यासमेति।'

शून्य को किसी राशि में जोड़ने अथवा घटाने से राशि के चिन्ह में कोई परिवर्तन नहीं

होता। गणित के संकेत लिपि में–

0+क = क, क+0 = क, क–0 = क, 0–क = 0

0×क = 0, क/0 = खहर (Infinity)।

ब्रह्मगुप्त ने कहा है कि कोई भी राशि (संख्या) 0 (Zero) से विभाजित किया जाये तो परिणाम (Resultant), अनन्त (Infinity) होगा। 'खहर' का अर्थ है –'अनन्त'(Infinity)। उन्होंने निम्न प्रकार से व्याख्या किया है–

1/0.5=2; 1/0.1=10; 1/0.01=100; 1/0.001=1000; 1/0= अनन्त (Infinity) (∞), गणित में अनन्त (Infinity) को संकेत रूप (∞) इस प्रकार व्यक्त किया जाता है।

यजुर्वेद में अनन्त का अनन्त, असंख्यात, पूर्णम्, अदिति आदि के रूप में उल्लेख प्राप्त होता है। शुक्लयजुर्वेद के ईशावास्योपनिषद् के मंगलाचरण के मन्त्र में कहा गया है कि ओम् पूर्ण है, इस पूर्ण में से पूर्ण को निकाल लिया जाए तो पूर्ण ही अवशेष रह जाता है। गणितशास्त्र की भाषा में इसकी अभिव्यक्ति निम्न प्रकार से की जा सकती है–

(∞) – (∞) = (∞)

(Infinity) - (Infinity) = (Infinity)

दशमलव (Decimal)

सर्वप्रथम भारत में दशमलव पद्धति की शुरूआत हुई। ऋग्वेद में शून्य के सांकेतिक चिह्न प्राप्त होते हैं। पिंगल के 'छन्दःसूत्र' में भी शून्य के सांकेतिक चिह्न प्राप्त होते हैं। जैसे– 1. एकादश अर्थात् एक (1) और दश (10) (1+10=11) 2. एकविंशति एक (1) और विंशति (20) (1+20=21) 3. एकत्रिंशत् एक (1) और त्रिंशत् (30) (1+30=31), इसी प्रकार यजुर्वेद में भी 10 को आधार बनाकर संख्याओं का महत्त्व बतलाया गया है। जैसे –परार्ध तक को बतलाया गया है।

वर्ग एवं वर्गमूल(Square & Square root)

समचतुरश्र की वर्ग संज्ञा है तथा दो सदृश (समान) संख्याओं का गुणनफल वर्ग कहलाता है। √ बृजी- वर्जने से घञ् प्रत्यय लगकर वर्ग शब्द बना है। वर्जन का अर्थ वर्जित करना है। जो औरों को पृथक करे वह वर्ग है। गणित में वर्ग निम्नलिखित अर्थ में हुआ है-

1.समकोण समचतुर्भुज 2.संख्यात्मक वर्ग यथा $2^2$3.क्षेत्रफल संबंधी माप एकक यथा-वर्गमीटर आदि 4.सांख्यिकीय श्रेणी 5.श्रेणी 6.अयुग्मस्थान यथा – इकाई, सैकड़ा आदि।

'वर्गस्समचतुरश्रः फलञ्च सदृशद्वयस्य संवर्गः'। – (आर्यभट्टीयम्, गणितपाद, वर्गस्वरूपम्) – वह संख्या जिसकी दूसरी घात दी हुई संख्या के बराबर होती है, वह वर्गमूल कहलाता है। यथा– $4=2^2$। यहां 2 वर्ग मूल है।

घन एवं घनमूल (**Cube & Cube root**)

'सदृशत्रयसंवर्गो घनस्तथा द्वादशाग्रस्स्यात्'। – (आर्यभट्टीयम, गणितपाद, वर्गस्वरूपम) तीन तुल्य संख्याओं का परस्पर गुणा घन संज्ञक होता है तथा बारह समान किनारों (भुजाओं) के क्षेत्र को घन कहते हैं। घन शब्द निम्नलिखित तीन गणितीय अर्थों में प्रयुक्त होता है।

1.ठोस (Solid) यथा घनत्र्यस्र (Cube), घन आयत, घनवृत (Sphere) आदि।

2. समान तीन राशियों का गुणनफल यथा –$2\times2\times2=2^3$, $3\times3\times3=3^3$

3. घनक्षेत्र– यथा–$2\times2\times2=2^3=8$, यहां 8 घनक्षेत्र कहलायेगा। घनफल के अर्थ में आयतन (Volume) शब्द का भी प्रयोग होता है।

घनमूल (Cube Root) वह संख्या जिसकी तीसरी घात दी हुई संख्या के बराबर होती है, घनमूल कहलाता है। यथा–$27=3^3$

15.5 भारतीय गणितीय परम्परा में आचार्यों की भूमिका व उनका कालक्रम

1 वररुचि (**Vararuchi**)

वररुचि के काल के विषय में तथा इनके नाम के सम्बन्ध में कौन वररुचि हैं? मतभेद पाया जाता है। वररुचि प्रथम (343 से 410 ई० सन्) संभवतः केरल के थे। कथासरित्सागर के आधार पर वररुचि एक वैयाकरण और विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे। 13 वीं शताब्दी में तमिलनाडु में वररुचि खगोलशास्त्री के रूप में प्रसिद्ध थे। पाणिनि के समय कात्यायन ने वार्तिक लिखा परन्तु इनका समय काफी पूर्व का है इनके साथ ही वररुचि को पर्याय माना जाता है। वररुचि द्वारा निर्मित **चन्द्रवाक्य** (Chandravakyas) है, जिसमें 248 सूत्र है। इसमें सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति की गणना करने की विधि बतलायी गई है। वररुचि ने सर्वप्रथम 'कटपयादि' का अंकमाला तैयार किया जिसके द्वारा किसी शब्द को संख्या में अभिव्यक्त किया जा सकता है। संख्या अंकमाला निम्नलिखित है–

1	2	3	4	5	6	7	8	9	0
क	ख	ग	घ	ड.	च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म					
य	र	ल	व	श	ष	स	ह		

यथा– राम–25, कृष्ण–15, कमला–153 इत्यादि।

2 आर्यभट्ट प्रथम (**Aryabhatt First**)

गणितशास्त्र और खगोलशास्त्र के क्षेत्र में आर्यभट्ट प्रथम एक विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न युगद्रष्टा के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म 476 ई० में कुसुमपुर (पटना) में हुआ। इन्होंने 23 वर्ष की अल्पायु में गणितशास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ आर्यभट्टीयम् लिखा जो इन्हीं के नाम पर है। इसकी रचना पद्धति वैज्ञानिक है तथा भाषा संक्षिप्त है। आर्यभट्टीयम् चार भागों (पादों) में विभक्त है– 1. गीतिकापाद 2. गणितपाद 3. कालक्रियापाद 4. गोलपाद। इसमें सम्पूर्ण 121 श्लोक हैं। इसके प्रथम दो पादों में मुख्यतः अंकगणित, बीजगणित, ज्यामिति और त्रिकोणमिति का वर्णन किया गया है जिसमें वर्णमालाओं के साथ संख्या लिखने की पद्धति, सामान्य एवं द्विघात समीकरण (Quadratic Equations), कुट्टक पद्धति, त्रैराशिक नियम, वर्गमूल, घनमूल, त्रिभुज का क्षेत्रफल, शंकु (Cone), वृत–परिधि–व्यास प्रमाण अर्थात् पाई (π) का मूल्य आदि सम्मिलित हैं। शेष दो पादों– (कालक्रियापाद और गोलपाद) में खगोलीय सिद्धांतों जैसे पृथ्वी का दैनिक भ्रमण, युग, वर्ष, मास, दिवस इत्यादि की गणना एवं ग्रहगति नियम का प्रतिपादन किया गया है। आर्यभट्टीयम् में संख्या लेखन पद्धति की वैज्ञानिकता का उल्लेख निम्न प्रकार है–

जैसे– वर्ण क से लेकर म तक के अक्षर क्रमशः 1 से लेकर 25 तक की संख्याओं के द्योतक हैं। गीतिकापाद के पद्य सं० 2 में ङ् और म मिलकर य बनता है। [5 + 25 = 30], [ङ् + म = य] इस प्रकार य का मान 30 प्राप्त होता है। इसके बाद 'ह'कार तक के सभी वर्णों के मूल्य में 10 की वृद्धि होती है। जैसे – य = 30, र = 40, ल= 50, व= 60, श= 70, ष=80, स=90, ह= 100, स्वरों का मूल्य इस प्रकार है– (अ=1, इ=100, उ=100^2, ऋ=100^3, लृ=100^4, ए=100^5, ऐ=100^6, ओ=100^7, औ=100^8)

वर्गमूल की संक्षिप्त पद्धति गणितपाद के पद्य सं० (4) में वर्णित है। पाई (π) का सूक्ष्म मान आर्यभट्टीयम् के गणितपाद के पद्य सं० (10) में आर्यभट्ट ने बताया है जो निम्न प्रकार है–

> **चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणां।**
> **अयुतद्वयविष्कम्भस्यासन्नो वृत्तपरिणाहः।।**

अर्थात् 100+4=104×8=832

द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणां= 62000

वृत की परिधि = 62000+832=62832

व्यास=अयुतद्वय=10,000×2 =20,000

पाई (π) का मूल्य=परिधि / व्यास = 62832/20,000

पाई (π)=3.1416

प्रस्तुत पाई (π) का मूल्य वैश्विक स्तर पर प्रमाणिक माना गया है। घनमूल की संक्षिप्त सूत्र पद्धति गणितपाद के पद्य सं० (5) में वर्णित है। आर्यभट्ट ने त्रैराशिक नियम (Role of Three) का सूत्र गणितपाद के 26वें पद्य में बताया है।

आर्यभट्टीयम् पर चार टीकायें प्राप्त होती हैं। सर्वप्रथम भास्कर प्रथम ने (629 ई०) में आर्यभट्टीयम् पर महाभास्करीय एवं लघुभास्करीय टीकाओं को लिखा है। सूर्यदेवयज्वा

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

ने आर्यभट्टप्रकाश टीका लिखी है। परमेश्वर (1430 ई०) ने भट्टदीपिका लिखी है। नीलकण्ठ सोमयाजी (1443–1543 ई०) ने आर्यभट्टीयभाष्य लिखा है।

3 वराहमिहिर (**Varahmihir**)

आचार्य वराहमिहिर का जन्म 499 ई० में अवन्ति (उज्जैन) के निकट कापित्थक नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम आदित्यदास था, जो इनके विद्यागुरु भी थे। इन्होंने अपने प्रसिद्ध कृति बृहज्जातक (वृ० जा० उप०, अ०–9) के एक पद्य में अपने बारे में जानकारी दी है।

विक्रमादित्य (चन्द्रगुप्त द्वितीय) के नवरत्नों में से वराहमिहिर एक थे। वराहमिहिर आर्यभट्ट के समकालीन थे। वे कुसुमपुर (पटना) आर्यभट्ट से मिलने गये थे। इनकी प्रसिद्ध कृतियों में पञ्चसिद्धांतिका, बृहज्जातक, लघुजातक, बृहद्‌यात्रा, बृहत्संहिता इत्यादि प्रमुख हैं। पञ्चसिद्धांतिका में पाँच सिद्धांत हैं– रोलिश, रोमक, वशिष्ठ, सौर तथा पैतामह। इन पाँच सिद्धांतों में सौर सिद्धांत सूर्यसिद्धांत के नाम से प्रचलित है। इसमें 14 अधिक्रम (अध्याय) हैं– मध्यम, स्पष्ट, त्रिप्रश्न, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, परिलेख, ग्रहयुति, नक्षत्र–ग्रहयुति, उदयास्त, श्रृङ्गोन्नति पात, भूगोल, ज्योतिषोपनिषद् और मान। त्रिकोणमिति का वर्णन इनकी प्रसिद्ध कृतियों– बृहज्जातक, बृहत्संहिता एवं पञ्चसिद्धांतिका में प्राप्त होता है। त्रिकोणमिति की उत्पत्ति सूर्यसिद्धांत से मानी जाती है। जिसमें ज्या (sine), कोज्या (Cosine) अनुलोम साइन (उत्क्रमज्या), टैन्जेन्ट (Tangent), सेकेन्ट (Secant) इत्यादि का वर्णन प्राप्त होता है।

गणित–ज्योतिष के साथ ही फलित ज्योतिष की पुस्तक बृहज्जातक प्रसिद्ध है। अलबेरूनी (Alberuni) वराहमिहिर के ज्ञान को सत्य पर आश्रित मानता है।

बृहत्संहिता 105 अध्यायों में विभक्त है जिसमें 4000 पद्यों का उल्लेख है। प्रस्तुत ग्रंथ में बहुत सी वैज्ञानिकतापूर्ण तथ्यों का विवरण प्राप्त होता है। जैसे अध्याय 21 से 28 में वृष्टि और वायु का विवेचन किया है जो कृषिविज्ञान और वृष्टिविज्ञान के क्षेत्र में आधुनिक काल में भी उपादेय है। 29 से 39 अध्यायों में भूमि सम्बन्धित भूकम्प इत्यादि एवं अन्तरिक्ष में इन्द्रधनुष इत्यादि का वर्णन है। 53 वाँ अध्याय वास्तुविद्याध्याय के नाम से प्रसिद्ध है। 54वाँ अध्याय को दकार्गलाध्याय के नाम से जाना जाता है। दक का अर्थ है जल और अर्गल का अर्थ लकड़ी। इसमें भूमि के अन्तर्गत जल की जानकारी अर्थात् जलोत्पत्तिमान को बताया गया है। किस स्थान पर खारा जल और किस स्थान पर मीठा जल होगा। इसका विभिन्न प्रकार के वृक्षों के माध्यम से बताया है। कहाँ पर कितने फीट पर पानी मिलेगा इसका भी वर्णन है जो वैज्ञानिक रीति में प्रयोग किया जा सकता है। जल संरक्षण के सिद्धांत भी प्राप्त होता है।

4 ब्रह्मगुप्त (**Brahmagupta**)

ब्रह्मगुप्त एक विश्वविख्यात गणितज्ञ थे। इनका जन्म राजस्थान राज्य में आबू पर्वत तथा लूणी नदी के बीच स्थित भीनमाल नामक गांव में ईस्वी सन् 598 में हुआ था। इनके पिता का नाम जिष्णु था, इन्होंने प्राचीन ब्रह्मपितामहसिद्धांत के आधार पर ब्राह्मस्फुटसिद्धांत तथा खण्डखाद्यक नामक ग्रन्थ लिखा। इनका एक अन्य ग्रन्थ ध्यानग्रहोपदेश नाम से भी प्राप्त होता है। ब्राह्मस्फुटसिद्धांत नामक अपने ग्रन्थ की रचना ब्रह्मगुप्त ने मात्र 30 वर्ष की अल्पायु में किया। इस ग्रन्थ में कुल 21 अध्याय हैं। संपूर्ण ग्रन्थ के दो अध्यायों में गणित विषयों तथा शेष के 19 अध्यायों में ज्योतिष संबंधी विषयों का सन्निवेश किया है। इस ग्रन्थ के 12वें अध्याय की प्रसिद्धि

गणिताध्याय के नाम से विख्यात है। इस प्रसिद्ध ग्रन्थ का अनुवाद T. Olebrooke ने अंग्रेजी में किया जो 1927 में लंदन से छपा। ब्रह्मगुप्त ने अपने ग्रन्थ में गणित संबंधी प्रमुख नियमों यथा जोड़ना, घटाना, गुणा, भाग, वर्ग तथा वर्गमूल, घन तथा घनमूल, भिन्नों को जोड़ना, घटाना आदि, त्रैराशिक नियम, व्यस्त त्रैराशिक, भाण्ड, प्रतिभाण्ड, मिश्रक व्यवहार (त्रिभुज, चतुर्भुज आदि क्षेत्रों के क्षेत्रफलों को जानने की रीति) चिति व्यवहार (ढालू खाई का घनफल जानने की रीति) खात व्यवहार (खाई का क्षेत्रफल निकालना) क्राकचिक व्यवहार (आरा चलाने वालों का उपयोगी गणित) राशि व्यवहार (अन्न के ढ़ेर के परिमाण जानने की विधि), छाया व्यवहार (दीप स्तम्भ तथा उसकी छाया से संबंधित प्रश्न) इत्यादि का वर्णन किया है। आचार्य ब्रह्मगुप्त ने इसके अतिरिक्त गणक का वर्णन किया है। गणित की 20 क्रियाओं तथा 8 व्यवहारों को गणक कहा है।

20 परिकर्म – सङ्कलित, व्यवकलित, प्रत्युत्पन्न, भागहार वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, भागजाति, प्रभागजाति, भागानुबन्ध जाति, भागापवाह जाति, भागमाता जाति, त्रैराशिक, व्यस्त त्रैराशिक, पञ्चराशिक, सप्तराशिक, नवराशिक, एकादशराशिक तथा भाण्डप्रतिभाण्ड।

व्यवहार–मिश्रक, श्रेढी, क्षेत्र, खात, चिति, क्राकचिक राशिक और छाया।

ब्राह्मस्फुटसिद्धांत के 18 वें अध्याय को कुट्टकाध्याय के नाम से जाना जाता है। इसमें 103 श्लोक हैं। कुट्टक समीकरण (Indeterminate equation) बीजगणित का ही अंग है। ब्रह्मगुप्त ने कुट्टक निकालने के अनेक विधियों का वर्णन किया है।

ब्रह्मगुप्त ने रैखिक समीकरण का सिद्धांत दिया–

> अव्यक्तान्तरभक्तं व्यस्तं रूपान्तरं समेऽव्यक्तः।
> वर्गाव्यक्ता शोध्याः यस्मात् रूपाणि तदधस्तात्।। (ब्राह्मस्फुटसिद्धांत, 18.43)
> वर्गचतुर्गुणितानां रूपाणां मध्यवर्गसहितानाम्।
> मूलं मध्येनोनं वर्गद्विगुणोद्धृतं मध्यः।।(ब्राह्मस्फुटसिद्धांत, 18.44)

5 श्रीधर (**Shridhar**)

श्रीधराचार्य एक प्रसिद्ध गणितज्ञ थे। इनका जन्म 750 ईस्वी के लगभग माना जाता है। इनके पिता का नाम बलदेवाचार्य और माताजी का नाम अच्चोका था। इन्होंने शून्य की व्याख्या एवं द्विघात समीकरण (Quadratic Equation) को हल करने सम्बन्धी सूत्र का प्रतिपादन किया। इनकी प्रसिद्ध रचना गणितसार है जिसे त्रिशती या त्रिशतिका के नाम से भी जाना जाता है। श्रीधराचार्य ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ के प्रथम पद्य में स्वयं लिखा है कि यह ग्रन्थ उनके पाटीगणित का सार है। इनकी अन्य कृति पाटीगणित एवं बीजगणित (जो अप्राप्य है) का वर्णन भी प्राप्त होता है। इन्होंने बीजगणित के अनेक महत्त्वपूर्ण आविष्कार किये। वर्गात्मक समीकरण को पूर्ण वर्ग बनाकर हल करने का इनके द्वारा आविष्कृत नियम आज भी श्रीधर नियम अथवा हिन्दू नियम के नाम से प्रचलित हैं।

श्रीधराचार्य की प्रसिद्ध कृति त्रिशती को आधार बनाकर भास्कराचार्य ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ लीलावती की रचना की।

श्रीधराचार्य ने अपने ग्रन्थ गणितसार में निम्न विषयों यथा अभिन्न गुणक, भागहार, वर्ग,

वर्गमूल, घन, घनमूल, भिन्न, समच्छेद भागजाति, प्रभागजाति–भागानुबन्ध भागमातृजाति, त्रैराशिक, सप्तराशिक, नवराशिक, भाण्ड–प्रतिभाण्ड, मिश्रक व्यवहार, भाव्यक व्यवहार, एकपत्रीकरण सूत्र, सुवर्ण गणित, प्रक्षेपक गणित, समक्रय विक्रय सूत्र, श्रेणी व्यवहार, क्षेत्र व्यवहार, खात व्यवहार, चिति व्यवहार, काष्ठ व्यवहार, राशि व्यवहार, छाया व्यवहार, इत्यादि का समावेश तथा उसका विवरण प्रस्तुत किया है।

शून्य की व्याख्या – अन्य गणिताचार्यों की तुलना में श्रीधराचार्य द्वारा प्रस्तुत शून्य की व्याख्या सर्वाधिक स्पष्ट है– उनके द्वारा की गई व्याख्या यदि किसी संख्या में शून्य जोड़ा जाता है तो योगफल उस संख्या के बराबर होता है। यदि किसी संख्या से शून्य घटाया जाता है तो परिणाम उस संख्या के बराबर ही होता है। यदि शून्य को किसी भी संख्या से गुणा किया जाता है तो गुणनफल शून्य ही होगा।

- किसी संख्या को भिन्न (थ्तंबजपवद) द्वारा भाजित करने के लिए उन्होंने यह बताया कि उस संख्या में उस भिन्न के व्युत्क्रम (त्मबपचतवबंस) से गुणा कर देना चाहिए।
- श्रीधराचार्य ने द्विघात समीकरण (फनंकतंजपब म्ुनंजपवद) ंग^2+इग+ब=0 को हल करने की विधि को बतलाया है–

  चतुराहतवर्गसमैः रूपैः पक्षद्वयं गुणयेत्।
  अव्यक्तवर्गरूपैः उक्तौ पक्षौ ततो मूलम्।।

(भास्कराचार्य द्वारा बीजगणित के अव्यक्तवर्ग समीकरण में उद्धृत)

द्विघात समीकरण–$ax^2+bx+c=0$

दोनों पक्षों में (4a) से गुणा करने पर–

$4a^2x^2+4abx+4ac=0$

दोनों पक्षों से (4ac) घटाने पर–

$$4a^2x^2+4abx=-4ac$$

दोनों पक्षों में (b^2) जोड़ने पर–

$$4a^2x^2+4abx+b^2=-4ac+b^2$$

चूकि (since)

$(m+n)^2=m^2+2mn+n^2$

पुनः वामपक्ष (Left side) से वर्ग (square) पूर्ण करने पर–

$(2ax+b)^2=b^2-4ac=D$

वर्गमूल (square roots) लेने पर–

$2ax+b=\pm\sqrt{D}$

$2ax=-b\pm\sqrt{D}$

और 2a से भाग देने पर–

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

$x=(-b\pm\sqrt{b^2-4ac})/(2a)$

इस प्रकार उपर्युक्त सूत्र आधुनिक गणित में द्विघात समीकरण को हल करने के लिए प्रयोग किया जाता है।

6 आर्यभट्ट द्वितीय (**Aryabhatta-II**)

आर्यभट्ट द्वितीय ज्योतिषशास्त्र व गणितशास्त्र के मर्मज्ञ ज्ञाता माने जाते हैं। आधुनिक इतिहासकारों ने इनके जन्म का समय 920–1000 ईस्वी के लगभग माना है। आर्यभट्ट द्वितीय की प्रसिद्धि उनके सिद्धहस्त ग्रन्थ 'महासिद्धान्त' से प्राप्त हुई है। इसमें गणित विषयक तथ्यों एवं सिद्धांतों को समाहित किया है।

आर्या छन्द में निबद्ध एवं 18 अधिकारों में विभक्त इस ग्रन्थ में कुल मिलाकर 625 श्लोक हैं। इस ग्रन्थ में प्रारम्भिक 12 अधिकारों में खगोलीय गणित का वर्णन है तथा प्राचीन ज्योतिषविदों एवं गणितज्ञों द्वारा पूर्व में वर्णित सिद्धांतों एवं नियमों का वर्णन है। आगे के बाकी बचे 6 अधिकारों में बीजगणित, भूगोल एवं ज्यामिति इत्यादि गणित संबंधी विषयों का विवरण है। 14 वें अधिकार को गोलाध्याय के नाम से जाना जाता है इसमें पाटीगणित के प्रश्न है। 15वें अधिकार में क्षेत्रफल, घनफल, आदि का वर्णन है। 16वें अधिकार का नाम भुवनकोश प्रश्नोत्तर है जिसमें खगोल स्वर्गादिलोक, भूगोल आदि का वर्णन है। 17 वें अध्याय को प्रश्नोत्तराध्याय कहते हैं तथा इसमें कुट्टक का भी वर्णन है जिसमें ग्रहों की मध्यगति तथा कुट्टक संबंधी प्रश्नों पर भी विचार किया गया है।

- आर्यभट्ट द्वितीय ने चलन–कलन के सम्बन्ध में भी विचार किया है।
- इन्होंने संख्या लेखन की पद्धति जिसे कटपयादि पद्धति कहते हैं का वर्णन किया है।

7 श्रीपति (**Shripati**)

भारतीय गणितशास्त्र एवं खगोलविज्ञान के क्षेत्र में श्रीपति का योगदान अद्वितीय रहा है। ये 11वीं शताब्दी के भारत के सर्वोत्कृष्ट गणितज्ञ माने जाते हैं। श्रीपति ने स्वविरचित ग्रन्थ ध्रुवमानस करण में अपना परिचय स्वयं देते हुए अपने पिता का नाम नागदेव व दादा का नाम केशवभट्ट बताया है। ये महाराष्ट्र प्रदेश के निवासी थे तथा गणित एवं ज्योतिष विद्या के मर्मज्ञ विद्वान लल्ल के अनुयायी थे।

श्रीपति का काल वराहमिहिर (600 ई०) तथा लल्ल (748 ई०) के बाद का माना जाता है। इनकी प्रसिद्ध ज्योतिष विषयक कृति 'सिद्धान्तशेखर' का उल्लेख भास्कराचार्य (12वीं शती) ने किया है। श्रीपति ने अपने प्रसिद्ध करण ग्रन्थ 'धीकोटिद' में 961 शक सं०= 1039 ई० को करण का काल माना है। इस प्रकार श्रीपति का जन्मकाल एकादश शती का पूर्वार्द्ध माना गया है।

गणित विषय से संबंधित इनकी दो कृतियाँ सुप्रसिद्ध हैं–

(1) बीजगणिततिलक

(2) बीजगणित

1. बीजगणिततिलक अथवा गणिततिलक इस ग्रन्थ में कुल 125 पद्य हैं तथा

सर्वप्रथम गणित के आठ मौलिक परिक्रमों का वर्णन है। त्रैराशिक, पंचराशिक, एकपत्रीकरण, समीकरण के पूर्व ही कला–सवर्ण की विभिन्न चार जातियों का वर्णन किया है। कला–सवर्ण शब्द गणित का पारिभाषिक शब्द है। कला का अर्थ है भिन्न और सवर्ण का अर्थ है एक रूप में लाना। जोड़ने, घटाने से पहले भिन्नों के हर को समान रूप में लाना पड़ता है। इसी प्रक्रिया का नाम है कला– सवर्ण।

श्रीपतिकृत ज्योतिष विषयक ग्रन्थों का विवरण निम्न है–

1. सिद्धान्तशेखर– खगोलिकी से सम्बन्धित 19 अध्यायों का बृहद् ग्रन्थ।

2. धिकोटिद (करणग्रन्थ) 916 श० सं० में रचित है।

   प्रस्तुत ग्रन्थ 20 श्लोकों से युक्त सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहण से संबन्धित है।

3. ध्रुवमानस– यह ग्रहों के रेखांश, ग्रहण तथा मार्गों की गणना इत्यादि विषयों से युक्त तथा कुल 105 श्लोकों में निबद्ध ग्रन्थ है।

इसके अतिरिक्त

4. जातक पद्धति (श्रीपतिपद्धति)

5. ज्योतिषरत्नमाला

6. रत्नसार

7. श्रीपतिनिबन्ध

8. श्रीपतिसमुच्चय

इत्यादि ग्रन्थों के निर्माण से आचार्य श्रीपति की अलौकिक प्रतिभा, ज्योतिषशास्त्रीय पाण्डित्य तथा विद्वता के उच्चतम कोटि का परिचय प्राप्त होता है।

8 भास्कराचार्य द्वितीय (Bhaskaracharya-II)

भास्कराचार्य द्वितीय की अलौकिक प्रतिभा एवं गणित विषयक प्रकाण्ड विद्वता प्राचीन भारतीय गणितज्ञों में उनकी श्रेष्ठता को साबित करता है। इनका जन्म सह्याद्रि पर्वत के निकट विज्जडवीड नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम महेश्वर था तथा इनका जन्म काल 1036 शक (1114 ईस्वी) माना जाता है। मात्र 36 वर्ष की अल्पायु में इन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि की रचना की तथा इन्होंने स्वयं अपने इस ग्रन्थ पर वासनाभाष्य लिखा।

सिद्धान्तशिरोमणि ज्योतिष सिद्धान्त एवं खगोलगणित का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त इन्होंने 3 अन्य ग्रन्थों की रचना की जिसमें 1. लीलावती 2. बीजगणित 3. करणकुतूहल इत्यादि प्रमुख ग्रन्थ हैं।

1. लीलावती नामक अपनी प्रसिद्ध कृति में भास्कराचार्य ने अङ्कगणित, बीजगणित और ज्यामिति के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। लीलावती भास्कराचार्य की पुत्री का नाम था। यह ग्रन्थ पाटीगणित तथा क्षेत्रमिति (मेन्सुरेशन) का सम्मिलित ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में कुल 278 पद्य हैं। लीलावती में गणित विषयक निम्न प्रकरणों का सन्निवेश है–

पूर्णांड्.क और भिन्न, त्रैराशिक, ब्याज, व्यापारगणित, मिश्रण, श्रेणियाँ और श्रेढियाँ, क्रमचय (Permutations), मापिकी और बीजगणित।

2. बीजगणित– इसमें 5 प्रकरण हैं– करणियाँ, शून्यगणित, सरलसमीकरण, वर्गसमीकरण तथा कुट्टक। इस ग्रन्थ के आरम्भ में बीजगणित की उपयोगिता का वर्णन है। अंकगणित की सुव्यवस्था के लिए बीजगणित की सत्ता आवश्यक है। बीजगणित में भास्कर ने ब्रह्मगुप्त को अपना गुरू माना था। इन्होंने ज्यादातर ब्रह्मगुप्त के सिद्धान्तों को ही आगे बढ़ाया। बीजगणित में समीकरण को हल करने के लिए उन्होंने चक्रवाल का तरीका अपनाया। वह इनका एक महत्त्वपूर्ण योगदान था। किसी गोलार्ध का क्षेत्र और आयतन निश्चित करने के लिए समाकलन गणित द्वारा निकालने का वर्णन प्रथमतया इस पुस्तक में हुआ है। इसमें त्रिकोणमिति के कुछ महत्त्वपूर्ण सूत्र, प्रमेय तथा क्रमचय और संचय का विवरण मिलता है।

3. करणकुतूहल– खगोल विज्ञान की गणना एवं पंचांग विधि का निर्माण इत्यादि विषयों का वर्णन करणकुतूहल नामक ग्रन्थ में है।

भास्कराचार्य (द्वितीय) का गणित के क्षेत्र में अन्य प्रमुख अवदान निम्न हैं–

- सर्वप्रथम इन्होंने ही अंकगणित क्रियाओं का अपरिमेय राशियों में प्रयोग किया।
- गणित को इनकी सर्वोत्तम देन चक्रीय विधि द्वारा आविष्कृत, अनिश्चित एकघातीय और वर्गसमीकरण के व्यापक हल हैं।
- भास्कर को अनंत तथा कलन के कुछ सूत्रों का ज्ञान था। इसके अतिरिक्त इन्होंने किसी फलन के अवकल को तात्कालिक गति का नाम दिया और सिद्ध किया कि–

  d (ज्या q) = (कोटिज्या φ). dq

  d (ज्याφ) = (कोटिज्याφ). dφ

इन्होंने प्रथमतया दशमलव प्रणाली की क्रमिक रूप से व्याख्या किया।

9 गणेश दैवज्ञ (**Ganesh Daivajna**)

गणेश दैवज्ञ एक प्रसिद्ध खगोलविद् थे। इनके द्वारा विरचित प्रसिद्ध कृति का नाम ग्रहलाघव है। अपनी विशिष्टता के कारण आधुनिक समय में भी इस ग्रन्थ की प्रासङ्गिकता मौजूद है। इनका जन्म ई० सन् 1507 में नांदगांव नामक स्थान पर हुआ था, इनके पिता का नाम केशव तथा माता का नाम लक्ष्मी था। गणेश दैवज्ञ के पिता बहुत बड़े आचार्य व संशोधक थे, इनके पिता केशव की प्रसिद्धि ग्रहकौतुक नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ से प्राप्त हुई थी।

गणेश दैवज्ञ की अन्य कृतियाँ जैसे– लघुतिथिचिन्तामणि, बृहत्तिथिचिंतामणि, सिद्धान्तशिरोमणिटीका, लीलावतीटीका, विवाहवृंदावनटीका, मुहूर्ततत्त्वटीका, श्राद्धनिर्णय, छंदोर्णव तर्जनीयंत्र, कृष्णाष्टमीनिर्णय, होलिकानिर्णय इत्यादि प्राप्त होती है। ग्रहलाघव ग्रन्थ के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि लम्बे–चौड़े अरबों संख्या के अङ्कों का अपवर्तनाड्.क समझ कर उसके स्थान पर छोटे अपवर्तित अकों के माध्यम से तथा ज्याचाप की क्लिष्ट गणित पद्धति के स्थान पर सर्वसुलभ लघु प्रणाली का प्रचलन के कारण से इस ग्रहसाधन ग्रन्थ की ग्रहलाघव संज्ञा हुई है।

10 कमलाकर (**Kamlakar**)

कमलाकर भट्ट का जन्म 1608 ई० सन् में महाराष्ट्र में हुआ था। ये प्रसिद्ध ज्योतिषविद् थे। इनके पिता का नाम नृसिंह दैवज्ञ था। ये श्री दिवाकर दैवज्ञ के अनुज और शिष्य थे। कमलाकर ने काशी में प्रचलित सूर्यसिद्धान्त के आधार पर अपने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सिद्धान्त–तत्त्व–विवेक नामक ग्रहगोल गणित से प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना किये। कमलाकर मौलिक विचारधारा के ज्योतिषविद् थे। ध्रुव तारे की गति का वर्णन भारतीय ज्योतिषशास्त्र में कहीं भी नहीं है, परन्तु कमलाकर उसे गतिशील मानते थे। इस बात की पुष्टि वर्तमान वैज्ञानिकों की गणना से होती है। अतः सही मायने में कमलाकर के सिद्धान्त–तत्त्व–विवेक में अपूर्व कल्पना, अपूर्व खोज तथा अपूर्व नूतन युक्तियों का यत्र–तत्र समावेश हुआ है। यद्यपि सिद्धान्ततत्त्वविवेक खगोलविज्ञान का ग्रन्थ है तथापि इसमें गणित की त्रिकोणमिति की व्याख्याएँ हैं।

कमलाकर की अन्य कृतियाँ यथा ग्रहगोलतत्त्व, ग्रहसारणी तथा कैराश्युदाहरण है तथा इनके द्वारा भास्कराचार्य की लीलावती पर मनोरमाटीका, गणेश दैवज्ञ के ग्रहलाघव पर टीका तथा सूर्यसिद्धान्त पर टीका इत्यादि का वर्णन मिलता है।

11 जयसिंह (**Jaisingh**)

आधुनिक वेधशालाओं के निर्माण के क्षेत्र में जयसिंह का स्थान देवशिल्पी विश्वकर्मा के सदृश ही है। इनका मूल नाम विजयसिंह था तथा बाद में ये सवाई जयसिंह या जयसिंह द्वितीय के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनका जन्म राजस्थान प्रान्त के आमेर राज्य में दिनांक 3 नवम्बर 1688 ई० को हुआ था। अपने पिता महाराजा बिशन सिंह के असामयिक मृत्यु के बाद 25 जनवरी 1700 ई० में मात्र 11 वर्ष की उम्र में वे आमेर की गद्दी पर बैठे। राजा जयसिंह को सवाई की उपाधि मुगल शासक औरंगजेब ने उनकी बुद्धिमानी और वीरता इत्यादि गुणों से प्रभावित होकर दी थी। (सवाई= सवा गुणा अधिक बुद्धिमान) सवाई जयसिंह को बचपन से ही गणित एवं खगोलज्योतिष में बड़ी गहरी दिलचस्पी थी। राजा को खगोलविद्या में दीक्षित करने का बड़ा श्रेय पंडितराज जगन्नाथ को है। जगन्नाथ ने ज्योतिर्विज्ञान विषयक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सिद्धान्तकौस्तुभ की रचना की तथा यूक्लिड के रेखागणित का अरबी से संस्कृत में अनुवाद किया।

सवाई जयसिंह ने अपने गुरू का अनुसरण करते हुए यह अनुभव किया कि न्यूटन और फ्लेमस्टीड आदि यूरोपीय विद्वानों के द्वारा प्रयुक्त पीतल या धातु के खगोलीय यंत्रों से, मौसम, तापमान, घिसाई, आदि कई कारणों से गणना फलावट में अक्सर अन्तर आ जाया करता है, इसलिए इन्होंने सबसे पहले 1724 ई० में दिल्ली की वेधशाला (जन्तर–मन्तर) में धातु को छोड़ कर चूने और तराशे गये पत्थर से बड़े–बड़े गणना यंत्र बनवाये तत्पश्चात् इन्होंने 1734 ई० में जयपुर में तथा 1732 ई० से 1734 ई० के बीच अन्तराल में मथुरा, बनारस और उज्जैन में वास्तुविद् विद्याधर के मार्गदर्शन में सम्राट् जगन्नाथ द्वारा विकसित उन्नत यंत्रो–सम्राट्यंत्र (लघु), नाड़ीवलययंत्र, कांतिवृक्षयंत्र, यंत्रराज, दक्षिनोदक, भित्तियंत्र, उन्नतांश यंत्र, जयप्रकाशयंत्र, सम्राट्यंत्र (दीर्घ), शततांश यंत्र, कपालीवलययंत्र, राशिवलययंत्र, चक्रयंत्र, रामयंत्र, त्रिगंशयंत्र आदि से युक्त वेधशालाओं का निर्माण करवाया। ये वेधशालायें भारतीय इतिहास के अन्धकारमय युग में उज्ज्वल प्रकाश स्तम्भ का कार्य कर रही हैं।

12 सुधाकर द्विवेदी (**Sudhakar Dwivedi**)

सुधाकर द्विवेदी आधुनिक काल के विख्यात ज्योतिषविद् एवं महान गणितज्ञ माने जाते

हैं। इनका जन्म शक संवत् (1860 ई०) को हुआ था। ये काशी के निवासी थे तथा काशी में गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज में गणित एवं ज्योतिष के शिक्षक थे। उत्तर भारत में गणित एवं ज्योतिष के प्रचार प्रसार का श्रेय इनको तथा इनके शिष्यों को जाता है। सुधाकर द्विवेदी को महामहोपाध्याय की पदवी प्राप्त थी। इनकी कृतियाँ निम्नलिखित हैं–

दीर्घवृत्तलक्षण, विचित्रप्रश्न, वास्तवचन्द्रश्रृङ्गोन्नतिसाधन, द्युतचरचार, पिण्डप्रभाकर, भाभ्रमरेणानिरूपण, धराभ्रम, ग्रहण करण, गोलीय रेखागणित, युक्लिड की पुस्तकों का संस्कृत में अनुवाद, गणक तरंगिणी इत्यादि ग्रन्थ है।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त इन्होंने यंत्रराज, लीलावती, बीजगणित, करण कुतूहल, पंचसिद्धान्तिका, सूर्यसिद्धान्त, ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त, महासिद्धान्त, याजुष और आर्चज्योतिष तथा ग्रहलाघव पर टीकाओं का निर्माण किया।

इन टीकाओं के अतिरिक्त हिन्दी में चलन–कलन, चलनराशिकलन, और समीकरण–मीमांसा नामक पुस्तकों की रचना इन्होंने किया।

गणितशास्त्र के क्षेत्र में इनका योगदान अद्वितीय रहा है। गणित विषयक ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय निम्न है–

1. दीर्घवृत्तलक्षणम्– इसमें दीर्घवृत्त के लक्षण व नियम विस्तारपूर्वक वर्णित हैं।
2. विचित्रप्रश्नसमङ्ग– गणित विषयक 20 प्रश्नों एवं उनके उत्तर का वर्णन इस ग्रन्थ में प्राप्त होता है।
3. ग्रहणकरण– इस ग्रन्थ में ग्रहों के ग्रहण का गणित की विधि का वर्णन है।
4. गोलीय रेखागणित– यह ग्रन्थ ज्यामिति (Geometry) से सम्बन्धित है।

15.6 सारांश

- गणित विषय के परंपरा से संबंधित सभी प्रकार की जानकारियों जैसे– गणितीय संख्याओं की उत्पत्ति, उद्भव तथा विकास, गणित के भेद, ज्योतिष गणित ,खगोल गणित के साथ–साथ व्यावहारिक गणित की विशेषताओं से आप पूर्ण रूप परिचित हो चुके होंगे।
- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के साथ–साथ कल्प सूत्रों में भी अंकगणित, बीजगणित तथा रेखागणित के विविध प्रयोग जैसे– पाइथागोरस प्रमेय, कलन–चलन आदि अनेक प्रकार के गणितीय सिद्धांतों से परिचित हो चुके होंगे।
- गणितीय आचार्यों की व्यापक परंपरा में आचार्य वररुचि से आरंभ होकर सुधाकर द्विवेदी पर्यंत आचार्यों के द्वारा किए गए गणितीय आविष्कार व उनके द्वारा रचित ग्रंथों में प्रतिपादित विशेष सिद्धांतों की जानकारी प्राप्त कर चुके होंगे। कल्पसूत्र के अंतर्गत आने वाले शुल्बसूत्र में आप रेखागणित के व्यापक प्रयोग की जानकारी प्राप्त कर चुके होंगे

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

15.7 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न – 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें –

1. चंद्रवाक्य ....रचना है।

2. आर्यभटियम् ....भागों में विभक्त है।

3. सर्वप्रथम संख्याओं की अवधारणा ....में प्राप्त होती है?

4. समसंख्या (Even numbers) तथा विषम संख्या (odd numbers) की अवधारणा .... में प्राप्त होती है।

5. अयुत .... कहते है।

बोध प्रश्न –2

सही उत्तर का चुनाव करें –

1. आर्यभट्ट प्रथम का जन्म कहां हुआ था। (वाराणसी / पटना)

2. वराहमिहिर का संबंध किससे है। (बृहद्जातक / गणितसार)

3. π का मान क्या है। (4.1346 / 3.1416)

4. ऋग्वेद विभक्त है। (मंडलों / खंडों)

5. शुल्ब का अर्थ है। (धागा / दण्ड)

बोध प्रश्न – 3

सही गलत का निशान लगाएं –

1 गीतिकापद आर्यभट्टीयम् का अंश है। (✓)(×)

2. शुल्बसूत्र कल्प वेदांग का ही एक भाग है। (✓)(×)

3. सिद्धांतशिरोमणि भस्काराचार्य की रचना है। (✓)(×)

4. ज्या का अर्थ Cosine होता है। (✓)(×)

5. वेधशाला को ही जंतर–मंतर की संज्ञा दी गई है। (✓)(×)

15.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1. वररुचि

2. चार

3. ऋग्वेद

4. यजुर्वेद

5. 10,000

बोध प्रश्न –2

1. पटना

2. बृहद्जातक

3. 3.1416

4. मण्डल

5. धागा

बोध प्रश्न – 3

1. सत्य

2. सत्य

3. सत्य

4. असत्य

5. सत्य

15.7 उपयोगी पुस्तकें

1- ऋग्वेद का सुबोध भाष्य, दामोदर सातवलेकर (भाष्य), गुजरात स्वाध्याय मण्डल, पारडी, 2000.

2- यजुर्वेद का सुबोध – भाष्य, दामोदरसातवलेकर (भाष्य), गुजरात स्वाध्याय मण्डल, पारडी, 1999.

3- गौड़, रामस्वरूप शर्मा (सम्पा.), सामवेद (सायणभाष्यसहित), चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2015.

4- अथर्ववेद का सुबोध भाष्य, दामोदर सातवलेकर (भाष्य), गुजरात स्वाध्याय मण्डल, पारडी, 1957.

5- उपाध्याय, बलदेव, प्राचीन भारतीय गणित (ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा भाषाशास्त्रीय अध्ययन), विज्ञान भारती, नई दिल्ली, 1971.

6- तीर्थ, भारती कृष्ण, वैदिक गणित, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2005.

7- द्विवेदी, सुधाकर (सम्पा०), बीजगणितम्, बनारस संस्कृत सीरिज, बनारस, 1927.

8- मिश्र, कमलाकांत (सम्पादक), संस्कृति वांग्मय में विज्ञान का इतिहास राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली, 2003.

9- कुलकर्णी, रघुनाथ पुरुषोत्तम, चार शुल्बसूत्र, महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान उज्जैन, 2003.

10- Rao, S. Balachandra, Indian Mathematics and Astronomy, Jnana Deep Publications, Bangalore, 1998.